

12.2

de electe electe

ओ३म्

रत्नाऽखिलानन्द्रभन्नेप्रणीती

ग्व्यसंग्रहः

ा सत्यार्थप्रकाशिकया इतटाकया भाषाटीकया च समेतः

जन्न च इंश्वरस्तुतिकाव्यं, धर्भलक्षणकाव्यं सत्यवर्णनकाव्यं, गण्पवर्णनकाव्यं चेति लघुकाव्यचतुष्ट्यं समुपनिबद्धसस्ति

> राजनियमेन स्वायत्तीकतोस्य मुद्रणाधिकारः

शकाब्दाः १८२९, ख्रिष्टाब्दाः १९७९ वैक्रमाब्दाः १९६४

१५५९मेरठनगरस्ये स्वामिमेशीनयन्त्रे

मुद्रापितः

१०००

मूल्यम् ≡) मार्गव्ययः)॥

pario

ให้เขตในเราะเลยในเรา โดยเก็บได้เราะ

The sale of the payon also the classical

· SEPTEBBE

The district was the base of the contract of t

ionerodo descido esperado Al incerios escueros Al ingresión de como

> รองอังเกิดของรากสอบใหม่ เหมาที่การสู

emp arment management

trophicustrest over Leer.

BURNESS OF STREET

्यानीक्ष

भागतियाः । भागतियाम् । स

(cess (in manus c

भूमिका



अवि षभ्याः ।

किं न दृश्यते भवद्विर्खीके यज्जनाः प्रातरेवो-त्थाय [सियाराम] [राधेश्यामा] ऽऽदिश-ब्दान्सुखादुद्धिरन्तो न केवलमन्तः करणं किन्तु भुवनमपि कलुषयम्ति । नावगच्छन्ति ते कथमीश्वरस्मरणं विधेयमिति । प्रातरुत्याय सर्वतः पूर्वं कथमीश्वरस्तुतिर्वि-धेयेति ताब्बियोधियतुं मयेदमीश्वरस्तुति काव्यं प्रणीतम् । धर्मज्ञानाय सत्यप्रवृत्तये पापेश्यो निवृत्तये चान्यद्पि काव्यत्रयम् सर्वलोकोपकाराय संस्कृत-भाषाठीकाभ्या-यपि नियोजितम्। तच्चेदं गृहीत्वा कण्ठस्यं विधाय च कृतार्थाभवन्तु प्रार्थयन्तु च पर-मेखरं येन करणावरणालयः स विसुर्द्ः खेभ्यो निवार्य सुखमविरतं विद्ध्यादिति शम्॥

भवत्कपापात्रम्-श्रीद्यानन्द्लहरीप्रणेता वर्त्तमानकविरत्नम् अखिलानन्द् शर्मा शास्त्री

कोइम् श्रीमते जगदीश्वराय नमः अधिश्वरस्तुतिकाव्यं प्रारभ्यते

हे देवदेव करणाणंव दोनवन्धो ! सृष्टिस्थितिप्रलयकारणभूतशक्ते ! । दुःखाणंवे निपतितं जगदेतदद्ग शीघ्रं समुद्धर विवर्धय सौख्यजातम् ॥१॥

(संस्कृत टीका) हे देव देव !हे करणार्णव ! हे दीनबन्धो ! हे सृष्टिस्थितिप्रख्यकारणभूत शक्ते ! दुःखार्णवे निपातितमेतज्ञगत् रूपया शीघं दुःखात्समुद्धरं,सौख्यजातं चाद्य विवर्धय॥ काव्येत्र वसन्ततिखका वृत्तम् । वसन्ततिखका तभौ जौ गाविति छन्दःसूत्रखक्षणात् ॥ १ ॥

(माषा टीका) हे देवों के देव! हे करणा के समुद्र! हे दीनों के रक्षक! हे स्रष्टि स्थिति प्रलयों के कारणक्षय शक्ति वाले! ईश्वर! आज दुःख के समुद्र में डूबे हुवे इम जात को शीप्र निकालिये जीर सुखों का समूह रूपा करके इस दीन हीन जगत के लिये दीजिये। यही आप से एक प्रार्थना है॥ १॥ न त्वां विहाय जगतां परिपालकीन्यों न त्वां विहाय जगतां परिबोधकोन्यः। न त्वां विहाय जगतामनुमोदकोन्य स्तस्मास्वमेव शरणं जगतां दयावन्॥२॥

(सं॰ टी॰) नेति-हे दयावन् ! त्वां विहाय न कोप्यन्यो जगतां परिपालकोस्ति तवैव जगत्परिपालक इतिनामस्मरणात्, न कोप्यन्यः परिवोधकोस्ति वेदमुखेन भवानेव बोधक इति यावत्, न कोप्यन्योनुमोदकोस्ति तवैव सौख्य प्रद इति नामस्मरणात्। अतो भवानेव जगतो स्य दारणमिति भावः॥ २॥

(भा० टी०) हे परमास्मन् ! आप के विना इसजगत् का न कोई दूषरा पालन करने बाला है जीर न कोई रस्ता बतलाने वाला है तथा न कोई इस के लिये सुखं का देने बाला है। इस लिये यब प्रकार से बाप ही इस के रक्षक हैं और कोई नहीं ॥ २॥

दौर्भाग्यमेव जगतस्तदलं न यत्ते तस्योपरीश्वर दयानयनप्रचारः । पित्रोः कुदृष्टिकरणन्तनयेषु लोके किं भाग्यवत्त्वमनुमापयति स्मकञ्चित्॥३॥ (सं ठी) दौर्भाग्यमिति—हे ईश्वर ! तद्छं जगतो दौर्भाग्यमेव, यत्ते तस्योपरि द्यार्द्रनयनप्रचारो न । छोके तनयेषु पित्रोः कुट्ट ष्टिकरणं किं तेषां भाग्यवत्त्वमनुमापयित ? दौर्भाग्यमेवति भावः ॥ ३॥

(भा० टो०) हे परमात्मन् ! यह खेबल खगत् का दुर्भाग्य हो प्रतीत होता है को छि आप को उन के जपर द्यादृष्टि नहीं है क्यों कि पुत्रों के जपर माता पिता की कुटूष्टि होना क्या उन के छिये भाग्यवान् होना बतलाया जा सकता है ? कदापि नहीं ॥ ३॥

यदाप्ययं नय उपस्थित एव लोके कर्मानुरूपफलबोधक एकतोलम् । आलोकयेऽन्यत इदं परितोपि वेगा-क्रीसर्गिकं त्विथ द्यालुपदं निविष्टम् ॥२॥

(तं॰ टी॰) यद्यपीति-ईश्वरो न्यायकारी कर्मानुरूपफल्ड इति नयो यद्यप्येकतो दरी-हृदयते, तथापि स्वभावासिद्धं दयाञ्जरिति पद-मन्यत स्त्विप निविष्टमहमिदमालोकये ॥१॥

(मा० टी०) यद्यपि कर्नों के अनुकूल फल देने वाले ज्यायकारी जाप एक तरफ़ से माने जाते हैं तथापि स्व- आब ही वे बाप की बतलांता हुआ द्यालु पर भी दूसरी तरफ़ दृष्टिगोधर हो रहा है॥ ४॥

वेदानुकूलचितानुगतेषु यहिं कारुण्यमीश्वर तवानुगतं मतं चेत्। विस्मृत्य ते पथिमतस्तत एव याताः कं यान्तु संप्रति निबोधय बोधगम्य ॥५॥ (सं० ठी०) वेदेति —हे बोधगम्य परमेश्वर! यहिं ते कारुण्यं वेदानुकूलचितानुगतेषु अनु-गतं लोकेमेतं चेत् तिहं ते पथं विस्मृत्य इतस्त तोगताजनाः संप्रति कं बोधियतारमनुयान्तु, त्वमेव निवोधय॥ ५॥

(आठ टीठ) हे परमात्मन् ! यदि आप की क्यांदृष्टि वेद के अनुकूल कमों के करने वाखों में ही हो तो भूल से वेद मार्ग को छोड़कर इचर उचर श्रटकते हुए पुरुषों को अब कीन मार्ग बतलावे, आप ही कहें।। पू।।

मार्गे निबोधय विबोधय निद्रितांस्तान् संबोधय समगतानिप मूढलोकान्। वेगाविवास्य कुमार्गस्तान्स्वधर्मे इत्तान्तराननु विधेहि कुरु प्रसादम् ॥६॥ (सं० टी०) मार्गमिति—हे परमेश्वर ! मार्ग निवाधय अविद्यान्धकारे निद्रितान्विवाधय श्रमजाळपतितान्मूढान्संबोधय कुमार्गरतान्वे-गानिवारय तांश्च स्वस्वधर्मे दत्तचित्ताननुविधेहि जगतामुपर्यनेन प्रकारेण प्रसादं कुरुव्वेतिभावः ६

(भार टी) हे परमात्मन् । आय हन छोगों को सीघा मार्ग बतलायें अविद्या के अन्यकार में सीये हुओं को जगायें सम जाल में पड़े हुये सूड़ों को छुड़ायें कुमार्ग में चलने वालों को हटाएं अपने २ घर्ष में हमारी हिं को बढ़ाएं, यही आप से ब्रार्थना है ॥ ६ ॥

गोमगडलं प्रतिदिनं विलयं समेति तारस्वरेण विधवा विरुद्दन्ति दुःखैः। सीद्दन्ति चार्यनिचया अपि पापपुष्जै रद्यापिनो यदि कृपा तव किं ततःस्यात् ७

(सं० टी०) तव करुणामन्तरा प्रतिदिनं गावोनद्रयन्ति, विधवा रुदन्ति, आर्याश्च सीदन्ति अधुनापि ते कपा न भविष्यति चेत्कदा तस्या अवसरः समागमिष्यतीति भावः ॥७॥

(भार टीर) हे परमात्मन् ! हज़ारों गीवों का रोज़ नाश हो रहा है । विचारी विधवा कंचे स्वर से रो रही हैं। आर्यवन दुःखी हो रहे हैं। अब सी यदि आप की कपा न होगी तो कब होगी॥ 9॥

नैजेन दुःखमुपयाति कुकर्मणालं लोकोयमित्यपि मृषा न जडानुभावैः । प्राप्तं यसोजनुष्टतां निचयैरमुत्र सर्वे विपत्तिकलनं सहसैब सर्वैः ॥ ६ ॥

(सं॰ टी॰) निजेनैव कुकर्मणा अयं छोको दुःखी भवतीति यत्कथनं तत्सत्यम् यतः या-विद्यत्तिकछनं तावत्सर्वे जडपाषाणपूजामूछक मेव ॥ ८॥

(भा० टी०) जपने किये हुये जुकर्नी से ही जनुष्य दुःखी होता है ऐसा को कहना है वह भूंठ नहीं क्यों कि जितनी विपश्चियां आपड़ी हैं वह सब मूर्तिपूत्रामूलक हैं द

कालाद्मतस्तव नुति प्रविहाय लोकी
यीद्विच्छकान्यनुमतानि मतानि तानि ।
कालात्ततो बहुविपत्तयएव लब्धा
स्तत्सांप्रतं कुरु दयामविलेष्वपि त्वम् ॥९॥

(सं० टी०) यस्मात्काछादारभ्य-हे पर-मात्मन् ! तवोपासनां विहाय छोकैर्निजेच्छया नानामतानि है।वशाक्तवैष्णवादीनि समाश्रि-तानि तत्कालमारम्य नानाविषचयएवं छेट्याः सांप्रतमनुकम्पया त्वं रक्ष रक्ष ॥ ९ ॥

(भाग ही । हे ईरवर! जब से मनुष्यों ने एंड आप की उपासना को छोड़कर अपनी २ इच्छा से शैव शास्त्र वैष्णव कादि नीना नतीं का आश्रमण किया तभी से सैकड़ों विपत्तियां निलीं इंचलिये अब आप कर्णाटृष्टि से इस जगत को देखिये॥ ए॥

दुर्भिक्षराजभयरीगवियोगशोक— भोहादिभिः परिवृतं परिती द्याली । मालोकियण्यसि यदि त्वभिदं जगतस्वं का तर्हि संप्रति गतिर्भवितास्य देव!॥१०॥ (सं० टी०) हे दयालो! दुर्भिक्षादिदुःखैः

परितः परिवृतं यदीदं जगद्भवाद्भाकोकपिष्यति तर्हि सांप्रतमस्य का गतिर्भविष्यति । अतः समा-छोकपेति भावः ॥ १०॥

(भा० टी०) है परभात्मन् ! चारी तरफ़ से विपंतियों से चिरे हुये इस जगत को यदि संब भी आप दयादृष्टि से म देखेंगे तो जिर इस की क्या दुद्धा होगी इस लिये आप शींघ्र ही दया करें ॥ १०॥

मा चेतसीदमनुकल्पय नो ममैते भक्ताइति प्रणतपालक पूर्णशक्ते !।

नैसर्गिकी जगदनुग्रहता यतस्ते गीता समस्ति व्युचैरिखलं पि विश्वे ॥११॥ (सं० टी०) हे भगवन् ! इमे जना मम भका न इति वृद्धिं हृदये मा कुरु यतस्तव सामान्यतय जगदनुग्रहता विवृधैरिखले पि विश्वे गीतास्ति १९

(साठ टीठ) है प्रश्नो ! यह जगत् मेरी सिक्त छोड़ जीरों की प्रक्तिमें लगा है ऐसा आप च्यान न करें क्योंकि आप की द्यालुवा तो स्वयं ही सानी जाती है ॥ ११ ॥

यद्वद्रवि:सकलएव लनोति दीप्तिं श्वन्द्रोपि सद्वदनुमोद्यत्तै मनुष्यान् । मेघीपि वर्षति यथा सममेव लोके तद्वन्त्वमीश्वर विधिहि द्याईदृष्टिम् ॥१२॥ (सं०दी०) यद्वद्रविः सक्छेएव विश्व दीप्तिं तनोति तद्वत् इन्दुर्गपे सर्वानेवाल्हाद्-यति। मेघश्वाष्यविद्योषेण यथा वर्षति तथा हे परमात्मन् !त्वमप्येकरूपेण द्यां विधेहि। वि-देशपाविद्योषो मा पद्येत्यर्थः॥ १२॥

(भा० दी०) हे परमात्मन्। जैसे सूर्य शामाप्यतया सब जगह एक सा प्रकाश खरता है, जैसे चन्द्रमा की दोशनी सब जगह एक सी होती है जीर जैसे मेच एक क्रप से सब जगह बर्बा करता है. इमी तरह से जाप भी एक क्रप से सब जगह कपा करें ॥ १२॥

किं संहरत्यपि कदापि कुमुद्वतीशो मन्दीकरोति किमहो क्वचिदप्यलं ताम् । चाराडालवेश्मनि निजां द्युतिमेतदेव सूर्ये पयोधरवरेपि निरीक्ष्यतेलम् ॥ १३॥

(सं० टी०) किमिति-कुमुद्दती इश्चन्द्रः चा-ण्डालवेशमानि किं निजां युतिं संहरति किं वा तां युतिं तत्र मन्दीकरोति ? एवं सूर्यमेघाविष समानतयेव सर्वत्र व्यवहरतः ॥ १३॥

(भा० टी०) क्या चन्द्रमा चार्डाछ के घरं में प्रकाश नहीं करता है या उस के मकान में अपने प्रकाश की मन्द करता है। मालून होता है कि चन्द्रमा का प्रकाश सानान्यतया चब जगह एक सा हुआ करता है। ऐसे ही मूर्य भीर मेच भी एक सा व्यवहार वर्सते हैं॥ १३॥

किं पक्षपातिन इसे अवता नियुक्ता वेदादिसूर्यशशिभूपवनादयस्ते। नो चेत्तवापि करुणा सममेव युक्ता सर्वत्र सर्वनियमैरिदमेव सिद्धम् ॥ १४ ॥ (तं॰ टी॰) यदिमे चन्द्रादयो छोकहिताय भवता नियुक्तास्ते किं पक्षपातिनः नो चेत्पक्ष- पातस्तिहि तबापि कृपा सामान्यतयैव सवत्रैक रूपा स्यादिति भावः ॥ १४॥

(भा० टी०) जो कि आपने चन्द्र आदि पदार्थ छोछ के खिये बनाये हैं वह क्या पक्षपात ने हैं, यदि नामान्य ने हैं ती आप की भी कृपा नामान्यतः नवंत्र होनी चाहिये पक्षपात छोड़ छर सज्जन वर्त्ता करते हैं ॥ १४॥

यो रक्षकः सकलविश्वजनस्य मन्ये नो नाशकः सभविता कथमप्यलं तत् । सामान्यतः कुरु कृपां सकलेष्वपि त्वं मा पश्य गौरवगुणान्मनुजेषु देव ॥१५॥ (संग्टी०) यः सर्वस्य रक्षकः सभक्षको न भवतीति नियमात्सर्वस्यैव जगतो रक्षा तवो-चितेति समायातम् ॥ १५॥

(भा० टी०) जो जगत का रसक है वह भक्षक कदापि नहीं वन बकता है। एव लिये भाप भी एक वी कपा करें ॥१५॥ आपत्तिमाण्य कुरुते स्मरणं मदीयं नो सौख्यमाप्य शठ एष मनु व्यवर्गः। नैनत्कुरुष्व हृद्ये विदितं समस्ते बालाः क्षुघोपगमनाज्जननीं स्मरन्ति॥१६॥ (सं० टी०) जगदेतद्विपत्तौ मां स्मरति

सौरूयेषु नेति हृदये मा कुर्याः। यतो बालाः

क्षुवोपगम एव मातरं पितरं च स्मरन्ति दुःख एव ते स्मरणमायातीति भावः ॥ १६॥

(भाव होव) दुःखों के आने पर यह जगत नेरा स्मरण करता है खुखों में नहीं करता, यह भाव जपने हृद्य में म रिखयेगा क्योंकि वालक भूख खगमे पर हो माता पिता को याद किया करते हैं॥ १६॥

बेदेषु ते गुणगणानुगर्मैः प्रपूर्णे या या क्रिया विलिखितास्ति जगद्धिताय। सा सा भवच्छरणमेव दिशस्यनन्ता दीनार्तिनाशक ततः कुरु दृष्टिमाद्गाम् ॥१७॥ (सं० टी०) भवद्वणवर्णनपरे वेदे यायाक्रिया

जगतां हिताय दरीहरयते सा सा अवन्तसेव फल्डदमाबोधयति अतो वेदवतामपि अवानेव नायक इत्यर्थः॥ १७॥

(भा० टी०) आप के गुणानुवादों से भरे हुने नेद्में भी जो जो किया देखने में आती हैं वह आप ही को देशारे से बतलाती हैं। इस जिये आप ही प्रभु हैं॥ १९॥

सर्वं जगत्करुणया तव सौख्यमेति दुःखार्णवेपि निपतत्यपराधतस्ते। सामान्यभावमपि ते कृपया समेति भावत्रयेपि तव नायकतैव पूर्णा॥१८॥ (सं॰टी॰) तव क्रपया जगदेतत्सुखमामोति तवैव समक्षे कृतापराधं दुःखमेति तवैव करु-णया समानभावमेति। भावत्रयेप्यतो भवानेव नायक इत्यर्थः॥ १८॥

(भाव टीव) आप ही ही हवा से यह जगत सुखी बनता है और आप के सामने अपराघ करने से दुःखी बनता है। आप की करणा से ही सामान्यमाव में रहता है। इसलिये सोनों ऋप में आप ही इसके स्वामी हैं १८

दीनार्तिनाशक इति स्वयशोसित रक्ष्यं दोनान्समुद्धर तदा सकलैक्पायै:। नो चेत्तवैव चरितेषु विमानना स्यात् सर्वान्तरङ्गपरिबोधक सर्वमूर्ते॥ १९॥

(सं॰ टी॰) यहिं ते दीननाथ इति नाम सत्यं तर्हि दीनान्पालय । तदभावे तव चरिते विमानना जनानां स्पात् । नामसार्थवयं चरिते-रादर्शयस्विति भावः ॥ १९॥

(भा० टी०) जो आप का नाम दीनानाथ है तो दीनों की रक्षा की जिये नहीं तो आप के चरित्रों में वि-चहुता आयगी इसिलये नाम का निर्वाह की जिये ॥१९॥ किं ते वदामि प्रतोधिक मेतदेव

संप्रार्थये मम मतिस्तव वेदमार्गे।

ख्या भवेत्सकलजालमपास्य रम्थे यस्मिन्गतागत इति व्यवहारनाशः॥२०॥ (सं० टी०) अतोधिकं तवाग्रे किं वक्तव्यस् इयमेव मे प्रार्थनास्ति यन्मे मतिस्ते वैदिकमार्थे छग्ना स्यात् यत्र मार्गे गतानां गतागतं नश्य-तीति भावः॥ २०॥

(भार टीक) आप के सामनें और क्या कहूं मेरी यहीं प्रार्थना है कि मेरा मन बैंदि अधर्म को छोड़ कर इतरधर्म में कदापि न छगे। सर्वदा इसी में बना रहे॥ २०॥

आर्थोत्तमैरनुगते पथि यस्य जन्तो श्रेतोविशत्यनुदिनं स महाशयत्वम् । प्राप्नोति सम्यपदवीमपि चात्र लोके तस्मान्ममेयमनिशं त्विय देव भिक्षा ॥२१॥ (सं०टी०) यस्य पुरुषस्य मनः आर्थेरनुगते पथि रमते लोज लोके महाशयः सम्यश्च गीयते अहमपि तथाविधो भवेषमिति तवाग्रतो भिक्षा-करणम् ॥ २९॥

(भा० टी०) जिंच पुरुष का मन श्रेष्टों के अनुगत मार्ग में छगता है वह इस छोक में महाशय और सम्य कहने छायक होता है। मैं भी ऐसा बनूं यह आप के प्रार्थना है। २१॥ एवं भवे प्रतिपदं परमेश्वरं ये संप्रार्थयन्ति सकलप्रदइत्यवेक्ष्य । ते दु:स्वसागरसपास्य सुखेन पूर्णं भोक्षं समेत्य विचरन्ति यथेच्छकामाः ॥२२॥

(तं॰ टी॰) एवं जगित ये जनाः प्रमेश्वरं त्तकलपद इति मत्वा संप्रार्थयन्ति ते दुःखानि विहाय मोक्षमार्गमुपेत्य च यथेच्छकामाः प्रभ-वन्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

(भा० टी०) इस प्रकार संचार में को पुरुष समस्त यदार्थी के देने वाले देश्वर की प्रार्थना करते हैं वह दुः खों से जुल होकर यथेए जानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहर्तनान कविरवाऽखिलानन्द शर्मप्रणीसं वटीकमीखरस्तुतिकाव्यं समाप्तम् अतः परं चनेष्ठक्षणकान्यं प्रारम्यते यश्यायमाद्यः इलोकः

प्राप्ते विकारसभये मनसोयदादात् संरोधनन्तदुपसर्पणभावतोत्र । सहुर्मत्रणंनपरेऽतिनवीनकाव्ये तहुर्मलक्षणमुदोरितमाद्मसुग्रैः ॥ १ ॥

(सं० टी०) दशकं धर्मछक्षणिमित यनमनु ना प्रतिपादितं तदेव काल्यमुखेन वर्णियतुमनाः कविः प्रथमं वैर्यमाहः। प्राप्ते इति—मनसा विकारसमये प्राप्ते सित तदुपस्पणभावतः अर्थात् विकारोपस्पणभावात् यदाराञ्चेतसः सं-रोघनं तदेव धर्मवर्णनपरे अत्र नवीनकाल्ये उप्रवृद्धिमद्भिः आद्यं धर्मछक्षणमुदीरितम् । विकारहेतौ सित विक्रियन्ते येषां न चेतांसि तएव धीरा इति भावः। धर्मछक्षणन्तु दर्पण-कारैरिमिहितम् । व्यवसायाद्चलनं धर्म विक्रे महत्यपीति। उदाहरणं त्वस्य ॥ महादेवसमाधि-कालः। †दश्रथसुतवनगमनसमयश्च। व्यवसा-

दिक * श्रुताप्तरोगीः † बाहूतस्याः + मनोनवङ्गारः

येश्व धर्मोपाजनम् । तत्फलमार्यत्वम् । कविषेत्र वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

(न्नार्ग टी के) चित्तं के विकार का जाई समय उपस्थित हो उस समय जो उस विकार से मन का रोकना उसी को धर्म का पहिंछी लक्षण चैर्य कहते हैं। विकारहेतु के प्राप्त होने पर जिन का चित्तं चन्नुलं न हीं वे ही पुरुष चीर कहने योग्य हैं। उसे का उदाहरेंण महादेव का समाधिकाल और रामधन्त्रं के बग जाने का समय है ॥१॥

एवं घृत्यारूयमाद्यं धर्मे खर्माणं वर्णे यित्वां सनारूयं द्वितीयं खर्मणं वर्णेयबाह् —

दीषागमेपि खलसंगवशात् प्रवृत्ते ज्ञानोदयात्सहनशीलतया सहैक्यम् । यत्पूरुषस्य बहुरागमये हृदन्ते भूषात्तदेव नितरां क्षमयानुगम्यम् ॥२॥

(सं० टी०) खिळलंगवशात्प्रवृत्ते दोषागमे सत्यिप यत्पूरुषस्य हृदन्ते ज्ञानोदयात्सहनशी-ळतया सह लांगत्यं भूयात्तदेव नित्रां क्षम-याप्यनुगतम् क्षमावाष्यमित्यर्थः । बहुरागमये इति विशेषणं दोषागमस्य बोध्यम् ॥ २ ॥

(भाव टीव) दुष्ट सङ्ग से सत्पत्ति को प्राप्त हुये नामा यु:खों से पूर्ण दोवीं के आने पर को जान के सदय से सहमशीखता से साथ सन की चञ्चसता का रोकना स्थे ही मद्र पुरुष समा कहा करते हैं। वसीलिये किसी किसी ने कहा भी हैं— "समा शक्तं करें यहय दुर्गनः किं करिष्यति। असूणे पतितीसिंहः स्थयमेकोपशास्यति" प्रस् का अयं जित सरस है। २॥

एवं समास्यं दितीयमङ्गं वर्णियत्वा दमास्यं वतीयमङ्गं वर्णिययदाह-नैजेषु भिन्नविषयेषु यदिन्द्रियाणां चाञ्चल्यतोगमनमग्रहणात्प्रवृत्तम् । तिन्नग्रहोदमङ्ति प्रथितः समन्तात् उक्तश्च धर्मविषये मनुनापि हर्षात् ॥३॥ (सं०टी०) इन्द्रियाणामनिरोधाञ्चञ्चल-तया यत्तेषां निज २ विषयेषु गमनं तस्य निरोध एव दमइति कथ्यते। स एव धर्माङ्गतया मञ्ज-नापि निगदितएव॥ ३॥

(भा० टी०) अपने २ विषयों में जलते हुये इन्द्रियों का को विधियूर्वक रोकना उने दम कहते हैं। वही दम ममु जी ने भी घमें का तीनरा अङ्ग बतलाया है। इस दूर्य दमारूव वृतीयमङ्गं वर्णयित्वा अस्तेय

इति चतुर्यमङ्गं निदर्शयकाह-कायेन चित्तविषयेण गिरा च लोके न ग्राह्ममन्यपुरुषस्य पदार्थजातम्। येवंविचा जनमतिर्गदिता कवीन्द्रै-रस्तेयतापरतया किल सैंव सर्वै: ॥१॥

(सं व टी व) मनसा वाचा कर्मणा परस्व कदापि कुत्रापि न प्राह्ममिति या मितः सैव किल सर्वैः कवीन्द्रैरस्तेयपरत्वेनोक्ता । यत्फलं महर्षिणा पतञ्जलिना योगसूत्रे स्वमुखेनोक्तम् । अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरह्मोपस्थानमिति । यमा-नुद्दिद्रयैतत्कथनं महर्षेः ॥ १८ ॥

(भाग होन) सन से, वाणी से, शरीर से हूमरे की वीज़ छेने के लिये दरादा करना चोरी में शामिल है। उस का न करना ही चोरी का त्याग है। उसे अस्तेय कहते हैं। उस का फल योगसूत्र में लिखा है कि सब रहीं की प्राप्ति ॥ चोरी से एक चीज़ की लेकर समस्त रहीं का छूट जाना कितनी सूर्वता की बात है। च्यान दीजिये॥ ॥॥

धर्मस्यैवं चतुर्थेयङ्गं धर्णियित्वा शीवास्वं पञ्चममङ्गं वर्णियसुमनाःप्राह्-

देहस्य निर्मलजलेन मनोमलस्य सत्येन भूतविकृतेरपि विद्या च । यच्छोधनं विमलभावचयेन बुद्धे-स्तच्छोचिमत्यनुमतं मनुना स्वधर्मे ॥ ५ ॥ (सं॰ टी॰) अद्गिगीताणीति पद्ममुद्धिरयेदं कथनम्। वेहस्य तोयेन, मनसः सत्येन, अन्तः सत्मनो विद्यातपोभ्यां, बुद्धेर्ज्ञानेन यच्छोधनं तच्छोचम्। तत्फलन्तु [शोचात्स्वाङ्गजुगुप्सा-परेरसंसर्ग इति सूत्रमुखेन] महर्षिभिरुक्तम्। एतवेव धर्मस्य पश्चममङ्गम् ॥ ५॥

(भाव टीव) शरीर के मल का जल है, मन का कत्य है. अन्तरात्मा का विद्या और तर्प है, बुद्धि का जान है को मुद्ध करना है उने शीच कहते हैं जिन का पंख योग सूत्र में अपने शरीर में हुणा और दूसरों के साथ न निक्रमा कहाहै ॥ ५ ॥

एवं थलेस्य पञ्चमनङ्गं वर्णयित्या प्रन्द्रियनिग्रहारूपं षष्ठमङ्गं वर्णयिश्यकाह्न-

दुःसङ्गतो यदिह वेद्विरुद्धमार्गी सर्वेन्द्रियानुगमनं प्रतिभाति तस्य । वेदोक्तकर्मविषये यमनं बलेन धर्मस्य लक्षणमुदीरितमैतदेव ॥ ६ ॥

(संव टी०) वेदविष्ठस्मार्गे दुःसङ्गवशा-द्यदिन्द्रियाणां गमनं तस्य वेदोक्तकर्मणि निय-मनम् इन्द्रियनिश्रहः।इन्द्रियाणामितिचश्रस्त्रतया सर्वथा नियमनासंभवात् । यथा सामान्यतया स्नोप्रवृत्ते। निजयद्वीगमनं निश्रहानुष्ठहणभूतम्। एतच व्याकरणमहाभाष्य स्पष्टम्। एतत्फलन्तु अम्मटपादैर्जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणामिति पद्यमुखेन काव्यप्रकाशे निदर्शितम् ॥ ६ ॥

(प्रा० टी०) दुःशक्ष के वय से वेदवाद्य भागे में जो पन्द्रियों का जाना सामान्यता से पाया जाता है, उन का वेदामुकूल कर्मों में लगाना दिन्द्रियों का नियह कहाता है। सर्वेषा दिन्द्रियों का रोकना असंसव है। जैसे सामान्यता से खो में प्रकृति होने पर अपनी खी में नियह काना महासाक्य में लिखा है। एवं का फल काव्यप्रकाश में समस्त सुसों का भोगना स्रतस्या है॥ ६॥

एवं चर्मस्य षष्ठमङ्गमावर्ग संबतं घीरित्यास्यं स्रम्भमञ्जं वर्श्वयकाञ्च -

षरकार्यमार्यपुरुषेरनुसेवितं तत् कार्यं समस्तमनुजैरिव कार्यमेव । नो तद्विरुद्धमिति या सुविवेचना सा चीरुच्यते मतिमतां प्रथमैः कवीस्द्रैः ॥ ७॥

(सं० टी०) सज्जनानुष्ठितं कार्यं कर्नव्य-मिति या मितिः। सैक घीरुच्यते भव्येरार्यभद्रे-रिति स्थितम् ॥ तद्विरुद्धविवेचनमस्याः कार्यम्। आर्यजनानुगतस्य धर्माङ्गत्वं वदानुकूळकार्य-स्वात् ॥ ७॥ (साठ टीठ) चिम काम की ग्रेष्ठ पुरुष करें उस की करना चाहिये, उन से विरुद्ध कर्दाांप न करना चाहिये, ऐना की विचार का खरना है वही बुद्धि का चिह्न माना काता है॥ ९॥

एवं घर्भस्य समनमङ्गनुङ्धाः विद्याख्यसप्टमसङ्ग वर्णायन्यसाङ्

नित्येषु नित्यमिति वस्तुषु कल्पना या ' शुद्धेषु शुद्धिमिति सौख्यमये सुखेति । आत्मेति चात्मिन यथार्थतया समुक्ता विद्येति सा तदितरा गदितास्त्यविद्या॥द॥

(सं० टी०) नित्ये शुद्धे सुखमये आत्मिन द्य नित्यं शुद्धं सुखमयं आत्ममयं चेति यज्ज्ञानं सा विद्या, तदितरा अविद्या।सा च विद्या परा-परभेदेन द्विघा, तत्र षडक्नसहिता वेदचतुष्टया-त्मिका अपरा, ईश्वरप्राप्तिमूला शास्त्ररूपा परेति मुण्डकोपानिपदि स्पष्टतया प्रतिपादितम् । अ-विद्या तु अनित्याश्चिदुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरेवेति योगदर्शने स्पष्टम् । सेव पश्चक्रशमूलेति दिक् ॥ ८ ॥

(भाव टीव) नित्य पदार्थ में नित्य बुद्धि रखना, शुद्ध में ग्रुद्ध, सुखमय में झुखमय विद्या कहाती है। वह मुखक उपनिषद् में दो प्रकार की मानी हुई है। एक अपरा, दूसरी परा। विद्या से मिल अविद्या है जो कि पांच क्रेशों का खूछ योगदर्शन में मानी गई है। दा

एवं धर्मस्थाप्टनं सक्षणमुक्ता सम्पाख्यं नवसं उक्षणं वक्तुमनाःप्राह्-

ज्ञानादसंभवतयानुगते पदार्थे नेदं कथंचिदपि संभवितेति भाव: । धर्मैकवर्णनपरे लघुकाव्यरते किंनो भया निगदित: किलसरयबुद्धा ॥९॥

(सं० टी०) असंभवदोषप्रस्ते पदार्थे नेदं कदापि संभविमिति यण्ज्ञानं तत्सत्यम्। तच्च ज्ञानोदयादिति हेतुः। फुळं त्वस्य सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफळाश्रयत्विमिति योगदर्शने समुक्तम्। न हि सत्यात्परोधर्मः। सत्य मेवजयते नानृतम्। सत्येनोत्तिभता भूमिरिति सर्वत्र सत्यस्यैव मुख्य-त्वमुक्तम्॥ १॥

(भाव टीव) अवस्मवहृष दीय से ग्रस्त पदार्थ में कदापि संभवसृद्धि न करना सत्य कहाता है। जिस पदार्थ का उक्षण और प्रमाण से ज्ञान न हो उसे निष्या मानना चाहिये। चार प्रकार के प्रमाणों से अतिरिक्त पदार्थ कोई नहीं है॥ ९॥

एवं नवसं घर्मछक्षगां वर्णियत्वा आक्रीघारूयं द्शममङ्गं वर्णवनाह्-शत्रीविकारजनके मनसी विरोधे प्राप्ते प्रयोजनवशात्परमेपि योयम्। चित्ताविकारविषय: स महात्मवर्धी रक्रोध इत्यनुमतो मनुना प्रदिष्टः ॥ १०॥ (सं० टी०) मनसोविकारजनके परमे शत्री-विरोधे प्रयोजनवशात्प्राप्ते सति योयं चित्तावि-कारिवषयः समहात्मवर्षेरकोध इत्यनुमतः १० (भा० हो०) सन से विकारजनक शत्रु के विरोध उपस्थित होने पर को चित्त के ऊपर विकार न आना वह सकोध कहाता है। वही घर्च का दशन अङ्ग है॥१०॥ एवं दशाङ्गं धर्में वर्णियत्वा यनानां नियमानाञ्च तद्नुकूखत्वात्तेषामि धर्णनमाह-दु:खानुचिन्तनमहदिवमात्महेतोः स्वस्मात्परस्य मनसापिवदन्ति हिंसाम्। तत्त्वागएव नितरां गदितोस्त्यहिंसा-क्रपोयमेषु परमर्षिभिरु क्तएव ॥ ११ ॥ (सं० टी०) स्वस्मात्परस्य मनुजस्य निजप्रयो

जनतिद्वये मनता वाचा कर्मणा दुःखानुचिन्तनं

हिंसा, तत्त्वागएव अहिंसापदवाच्यः अतएव अहिंसा परमोधर्म इत्युक्तस्। तत्फलन्तु अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सिनिधा वैरत्याग इति योगसूत्रे समुक्तस् । वैरत्यागे मैठ्यं, मैठ्ये सौरूपमिति सामान्यत्या धर्मः ॥ ११॥

(भा० टी०) तन मन धन वे दूबरे के लिये दुःख पहुंचाना हिंगा में दाख़िल है। उस का छोड़ना ही अहिंगा कहाती है, बही परमधमें है, जिस का मल वैरत्याग, सब वे नित्रता और सर्वत्र खुल है॥ १९॥

> अस्तेयबत्ययोर्धर्शनं मनुवीक्षस्त्रणेषु बमुक्तम्, चाम्प्रतं ब्रह्मषर्यमाह्न

यज्ञीपवीतपरिधानत एव गेहाद्द दूरे गुरो:कुलमवाप्य परिश्वमेण । वेदादिशास्त्रपठनाय निबन्धनं यत् तद्वह्मचर्यमिति सङ्गदितं यमेषु ॥ १२॥

(सं० टी०) यज्ञोपवीतसंस्कारादनन्तरम् गुरुकुलमवाप्य, वेदादिपठनाय यद् व्रतबन्धनं तद् ब्रह्मचर्यम्। ब्रह्म वेदस्तद्ध्यनाय कृतं व्रत-बन्धनं ब्रह्मचर्यम्। तत्फलन्तु ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ इति योगदर्शने स्पष्टमेव। ब्रह्मचर्यण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि बहुधा वद्पि प्रतिपादितमेव ॥ १२॥

(भा० टो०) यद्योपवीत संस्कार वे लेकर गुरुकुल में जाके जो वेद पढ़ने के लिये व्रतबन्ध करना है वह ब्रह्मचर्य है। उस का फल बीर्यलाभ प्रत्यक्ष है॥ १२॥

एवं ब्रह्मचर्यमावर्ये अपरिग्रहं वर्णयनाह-

भिक्षादिवृत्तिमधिगम्य विधिप्रयुक्ता-मागन्तुकस्य विधिवर्जितवस्तुराशेः । यद्वर्जनं तदपरिग्रह इत्यमुत्र सर्वे वदन्ति कवयो मुनयो नयज्ञाः॥१३॥

(सं॰ टी॰) भिक्षावृत्तिमाश्चित्य वेदविहत्त-घान्यस्य यहर्जनं तद्परिग्रहवाच्यम्। जीवनाय मनुना भिक्षादयो वृत्तय उक्ताः। प्रतिग्रहस्तु न कदापि ग्राह्यः। प्रतिग्रहसमधौपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयदिति मनुवचनात्। एतत्फलन्तु अपरि-ग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोध इति पातञ्जल-योगदर्शने प्रतिपादितम्। एतत्सैवनेनैव त्रिकाल-दर्शित्वं भवतीति भावः॥ १३॥

(प्रा॰ टी॰) तिक्षा आदि वृत्ति का आश्रय लेकरके को वेदवाह्म कुषान्यका न लेना वह ही अपरिग्रह कहलाता है। उन का फल तीनों कालों का बोच होना वहा है। पहिले ऋषियों में यह था। आज कल झास्तणों ने नष्ट अष्ट कर दिया है॥ १३॥

एवं यसानां वर्षनं विधाय नियमानां वर्णनमाह तत्र शीवस्य इतवर्णनत्वात्सन्तोषाद्या निर्द्धियन्ते— अरूपेपि वस्तुनि विधेरुद्यादुपेते निर्वाह एव करणीय इति प्रलोक्य । या शान्तिरुत्तमगुणा सकलार्थजाते सन्तोष इत्यनुमता किल सैव विद्धीः ॥१८॥

(सं० ठी०) प्रारब्धवशादक्षेपि पदार्थे समुपळब्धे सित निर्वाहबुद्धया वस्त्वन्तरानिच्छनं स एव सन्तोषः, तत्फळं सन्तोषादनुत्तमसुख-लाभ इंति महर्षिणोक्तम् । * नीतिकारैरिप तृष्णाक्षयसुखस्य सर्वोत्तमसुखत्वमुक्तम् ॥१४॥

(भार टीर) प्रारब्धवश से समय पर थोड़े ही पदार्थ के आने से निर्वाह बृद्धि करके जो खण्णा का रोकना है वह सन्तरेय में दाखिछ है। जिस का फल सर्वोत्तम खखलाम माना गया है। इसी के बिना भाज कल के मनुष्य दीन हीन से प्रतीत होते हैं॥ १४॥

टि॰ यच कामसुखं+सन्तोषामृत+सन्तोषेण विना यः+सन्तोष एव पुरु+ दिखाशाप्र+तेनार्थं तं श्रुतं तेन+सर्वोत्तमम् ॥

एवं बन्तोवं वर्षनियत्वा तपीवर्षयत्वाह-वेदोक्तकर्मनियमादुव्रतवन्धनादी यद् दुःखमापतति तस्य यथाकथाञ्चित् । प्राणात्ययेपि सहनं तदुदीरयन्ति सत्यं तपो नियमदत्तनिजान्तरङ्गाः ॥१५॥

(सं० टी०) वेदोक्तकर्मवद्गात् प्रायश्चिता-दिषु चान्द्रायणकुच्छ्रचान्द्रायणद्वारा यद् दुःख-मुत्पद्यते तस्य सहनं तपः, ज्ञीतोष्णक्षात्पपासा-व्याधिचतुष्ट्यसहनं तदिति भावः , तत्फलं कार्यन्द्रियशुद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस इति योगदर्जने प्रतिपादितम् । अन्यदिष तद्वर्णनं नीतिकारैंस्तत्र तत्रोपन्यस्तम् ॥ १५॥

(भा० टी.०) वेदोक्त कर्मों के बीच में जो नाना व्रत प्रायितों के कारण दुःख का यहन यानी भूख, प्यास, सदी, गर्मी को को भोगना पड़ता है, उसे तप कहते हैं। वेदबाचा तप को तप नहीं कहते हैं। जिस का फल अश्विद्ध का सप नाना जाता है ॥ १५॥

एवं तपोवर्णियत्वा स्वाच्यायनाह-नित्यं गुरोः सविधमेत्य नितान्तभक्तया सर्वे विधाय विधिबोधितकृत्यजातम् । वेदोपवैद्यरिशीलनमेतदेव स्वाध्यायतामुपद्याति जनोत्तमेषु ॥ १६॥

(सं० टी०) नित्यं संध्यादिकं विधाय गुरो-रूपान्ते यत्प्रतिदिनं वेदाध्ययनं तत्स्वाध्यायपद-वाच्यं तत्फलन्तु स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोग इति स्पष्टम् । अतएव वेदार-यासो हि विप्रस्य परमं तप उच्यत इति मनुना प्रतिपादितम् । वेदेनैवेश्वरज्ञानलाभात् ॥ १६ ॥

(भा० टी०) प्रतिदिन जिनहीशादि कर्स खरहे गुढ़ के पास जाकर नर्जना से बेद बेदाङ्गों का जो पहना है, उने खाध्याय कहते हैं। जिस का फंड ईखर की प्राप्ति साफ़ तौर पर योगदर्शन अंतलाता है॥ १६॥

एवं बाध्यायमुक्केंशरप्रणिधानमाइ— सर्वत्र सर्वभय ईश्वर एव सर्वा— धारोऽजरोऽमर इति प्रविचार्य चित्ते । तस्यैव सद्गुणगणेष्वनुरागबुद्धि द्वीरेरहर्निशमुदा हृदये समन्तात्॥ १७॥ (सं० टी०) सर्वव्यापी सर्वाधार ईश्वर

एवं नान्य इति मत्वा यत्तद्गुणानुरागित्वं त-

प्रिणधानादिति योगकारैहदाहृतम् । समाधि-सिद्धौ सर्वेसिद्धिः । यददृश्यं यद्दृश्यं सर्वे दृश्यं समाधिसिद्धेनेति भावः । अतो योगाभ्यासो-भ्यसनीय इति पूर्वाचार्याः ॥ १७ ॥

(मां टीं) इस जगत का खामी एक ईखर ही है दूसरा कोई नहीं। ऐसा जान कर उसी के गुणों में अनुराग होना ईखरप्रणिधान कहाता है। उस का कछ समाधि सिद्धि है॥ १९॥

सहुर्मवर्णनपरं लघुकाव्यमेतह ये वर्तमानकविरत्नकृतं स्वकण्ठे। संस्थाप्य वैदिकपथेऽन्वहमेव रागाह यास्यन्ति ते न भवजालपथं कथंचित् १८

(सं० टी०) वैदिकधर्मवर्णनपरमतल्लघुकाव्यं ये जनाः पठित्वा तत्रैवानुरक्ता भविष्यन्ति ते भवसागरदुःखैरयुक्ता भविष्यन्तीति भावः १८

(प्रा० टी०) वैदिक्षध्ये के बत्ताने वाछ इस छोटे काव्य को को मनुष्य पढ़ कर वेदानुकूछ कमी को करेंगे वह समस्त दुःखों से खुटकर सर्वदा आनन्द का अनुप्रव करेंगे॥ १८॥

इति स्रोमद्वतं मान कविरत्नारिखलानन्द्शमेषणीतं सटीकं घम्मेलक्षणकाठ्यं समाप्तिमितस् ॥ अतः परं x सत्यवर्णनकाठ्यं ब्रारस्यते, यस्यायमाद्यः

इछोकः

यानीश्वरेण ऋषिभिश्व पराथंहती-राविष्कृतानि शुभमार्गनिबोधकानि । तान्येव मान्यपुरुषैनिजधमेवृद्धयै बोध्यानि सत्यमिदमाद्ममलं प्रदिष्टम् ॥१॥ (सं॰ टी॰) यानि ऋग्वेदादीन्येकविंदाति शास्त्राणि परमेश्वरेण ऋषिभिश्व शुभमार्गनि-योजकानीति मत्वा लोकानुकम्पयाप्रकटीकृतानि तान्येव मान्यपुरुषैनिजधमेवृद्धयै बोध्यानि, तदि-तराणि मनुष्यप्रणीतानि पुराणादीनि न। एतत् सत्याष्टके प्रथमं सत्यम् । अत्र च वसन्ततिल-कारुयं वृत्तम् ॥ १ ॥

(प्रा० टी०) जो खोकोपकार के लिये परमेष्ठर तथा ज्ञिवियों ने ज्ञाबेद कादि प्रक्लीस शास्त्र बनाये हैं उन ही को मान्य पुरुष अपने धर्म के खिये जानें। जो कि मनुष्य-कृत पुराणादि जालग्रन्थ हैं उन के जपर कदापि विश्वास न करें। यह सत्याष्ट्रक में पहिला सत्य कहा है ॥ १॥

[×] द्यानन्दप्रणीतमेतत्सत्याष्टकम्-भाषायां समुपत्तभ्यते तदेव काष्य-त्वेन मगा समुद्रासितम् ।

आद्मास्त्रमे गुरुकुले गुरुसेवलाहि धर्मानुवर्तनपरं षठनाहिकं यत्। वेदादिशास्त्रनिचयस्य तदेव मन्ये सत्यं द्वितीयमुद्धितं मुनिना प्रसादात् ॥२॥ (सं० टी०) ब्रह्मचर्याश्रमे गुरुकुलमाप्य गुरुसेवास्वधर्मानुष्ठानपूर्वकं यद्देदाहिसत्यशास्त्रा-रध्ययनं तद्दितीयं सत्यम्, मुनिना दयानन्देन समुक्तमिति शेषः॥ २॥

(भार्व टीर्व) ब्रह्म चर्च आश्रम में गुरुकुंछ आकर गुरु-मेथां और स्वधर्मानृष्ठानपूर्वक को वेदादि सत्यशाखों का पदना बह दूसरा सत्य साना गया है ॥ २॥

वेदाक्तधर्मपरिपालनमाश्रमेषु
सर्वेषु वर्णानियमानियमप्रभेदात्।
संध्यादिनित्यविधिसेवनमादरेण
सत्यं ततीयमपि वर्णितमेव देवै: ॥ ३॥

(सं टी) वर्णनियमपूर्वकं सर्वेष्वाश्रमेषु वैद्यासम्परिपालनम् आदरेण संध्यावन्दनाग्नि-हात्राद्यनुष्ठानं देवैदेयानन्दस्वामिभिस्तृतीयं सत्यं विशितम् ॥ ३ ॥

(भार टी०) वर्ण भेद से सब आग्रमों में वेदोक्त धर्म

का पालम करना और भांक्तपूर्वक संच्या जप अग्निहीत्र आदि नित्य कर्म करना तीयरा सत्य कहा गया है ॥३॥

काले स्वदारगमनं विधिना परस्ता च्छौते स्मृतिप्रणिहिते नुरितः स्वकृत्ये। वेदोक्तपञ्चभित्तयज्ञविधानचिन्ता तुर्यं निवेदयति सत्यपथं प्रभावात्॥४॥

(सं॰ टी॰) ऋतुसमये संस्कारविध्यनुकूल गर्भाधानसंस्कारपूर्वकं स्वदारगमनं श्रोतस्मार्त धर्मकृत्यानुगमनंपश्चमहायज्ञविधरनुष्ठानश्चस्वयः मेव चतुर्थं सत्यं निवेदयति ॥ ४ ॥

(भा० टी०) ऋतु समय में विद्य शीतिपूर्व क अपनी की में गमन करना और श्रुतिस्यृतिप्रतिपाद्य धर्मानु-ष्ठान में तत्पर रहकर पञ्जमहायक्षित्रिका प्रतिदिन सेवन करना चोधा नत्य माना जाता है॥ ॥॥

नित्यं यमेषु नियमेष्विप चानुपक्तिः सत्सङ्गतिश्च परमात्मिन भाववृत्तिः। योगेऽनुरक्तिरधिका परतोनुवान-प्रस्थाश्रमानुसरणं किल पञ्चमं स्यात्॥॥॥ (सं० टी०) प्रतिदिनं यमनियमविचार- करणं सत्सङ्गपूर्वकपरमात्मध्यानसाधनं यो-गाभ्यासाभ्यसनं वानप्रस्थाश्रमधारणश्च पश्चमं सत्यम् ॥ ५ ॥

(प्रा० हो०) प्रतिदिन यम और नियमों का विचार करना, सत्सङ्ग में रहकर परमात्मा का ध्यान घरना, योगाभ्यास का विचान छरते हुये वानप्रस्य आग्रम का घारण करना, पांचवां सत्य माना जाता है ॥ ५ ॥

वैराग्ययोगवद्यतो विरित्यभावात् संन्यासघारणमसक्तिरमुत्र भावे । वेदान्तशास्त्रपरिशीलनमात्मबुद्ध्या षष्टं समादिशतिस्वत्यमलं स्वभावात् ॥६॥ (सं० टी०) विचारविवेकवैराग्यवद्यतः ऐहलौकिकपदार्थेष्वसक्तिः ततःपरं संन्यासाश्रम घृतिः आत्मबुद्ध्या वेदान्तज्ञास्त्रपरिशीलनञ्च सर्वकर्मफलत्यागाद्यनुष्ठानविधानात्षष्ठं सत्यम् ६

(भार्ण टी०) विचार विवेक वैराग्यों के वश से मांमा-रिक पदार्थों में विरति करते हुये संन्यासाम्रम चारण कर हेब्बरध्यामपूर्वक वेदान्यशास्त्र का देखना छठा सत्य कहा गया है ॥ ६॥

विज्ञानपूर्वकमनर्थपराङ्मुखत्वं जन्मादिबन्धनविभञ्जनभावुकत्वम्। सङ्गानुलब्धबहुदोषनिराद्वृतिस्र संवोधयत्यनुगमाद्यि सप्तमं तत्॥ ७॥

(सं॰ टी॰) ज्ञानविज्ञानाम्याम् अनर्थेषु पराङ्मुखता सर्वानर्थजन्ममरणहर्षशोककाम क्राघलोभमोहविनाशकारणोपगमनं संगदोष-त्यागानुष्ठानश्च सप्तमं सत्यमविद्यति ॥७॥

(भाव टीव) ज्ञान और विज्ञान से अनर्था से मन का हटाना, समस्त दोषों के मूड जन्म मरण हवं शोक कानादिकों का नाश करना, स्कू दोषों को दूर हटाना सातवां सत्य माना जाता है ॥ ॥

क्रेशेतरातिगुणभाविमतापरस्ताद् भूतान्यतीत्य परमात्मपथं दिशन्ती । स्वाराज्यसिद्धिरिति या किल मोक्समूला तत्प्राप्तिरष्टममुदाहरति स्म सत्यम् ॥८॥

(सं॰ टी॰) अविद्याऽहिमतादिपञ्चक्लेश रहिता सत्वरज्ञहतमोऽतीता पञ्चमहाभूतातीत-गुणा परमात्मरूपं बेाधयन्ती या स्वाराज्यित-द्विमोक्षमूळा तत्प्राप्तिरष्टमं सत्यमादिशतीति भावः॥ ८॥ (ना० टो०) अविद्यादि पाञ्च क्षेशों से निल तीनों गुणों मे रहित पञ्चमहाभूनविद्यार से पर केवल ईश्वर का गुण बतलाने बाली मोक्षमूल को स्वाराज्यविद्धि उस का पाना भाठवां सत्य माना गया है ॥ ८॥

सत्याष्टकं हृदि विवायं मनुष्यलोके श्रोवतंमानकविरत्नहृतं मनुष्याः । ये ये स्वकार्यमनुयान्ति विधिप्रदिष्टं ते ते पराभवपदं न हि यान्तिदैवात् ॥९॥

(सं० टी०) श्रीवर्तमानकविरत्नकृतमतत् सत्याष्टकं हृदि विचार्य ये ये पुरुषाः विधिविहितं स्वस्वकार्यमनुयास्यन्ति ते ते दैवात्कदापि परा-भवं न यास्यन्तीति भावः ॥ ९ ॥

(भा० टी०) यतमान कविरत का बनाया हुया यह मत्याष्टक, को पुरुष अपने हृद्य में विचार कर वेदोल अपने २ कर्नों को करेंगे वे कदावि पराभव को प्राप्त नहीं होंगे॥ ९॥

इति श्रोमद्वर्तमानकविरद्वाऽविलानन्दशर्मप्रणीतं सटीकं सत्याष्टकं पूर्तिमगात् ॥ ओ अस्॥ अतः परं क्ष गप्पवर्णनकाव्यं प्रारम्यते यस्यायनाद्यः श्लोकः—

व्यासेन सूत्ररचनापटुना न यानि सम्पादितानि रचितानि च यानि धूर्तै:। अष्टादशापि किल तानि पुराणकानि मिथ्येति दोषभरितानि विदन्तु विज्ञाः॥१॥

(सं॰ टी॰) वेदान्तदर्शनसूत्रकारेण मह-षिणा व्यासेन यानि न सम्पादितानि, प्रत्युत स्वार्थसाधनदक्षेधूँतैर्यानि रचितानि, तानि कि-लाष्टादशपुराणकानि। कुत्सायाङ्गन्द। सर्वे विज्ञाः मिथ्यादोषप्रस्तानि अतएवाप्रमाणभूतानि च विदन्तु तेषु विश्वासं मा कुर्वन्त्विति भावः। एत-दाद्यङ्गप्पम्। काव्येत्र वसन्ततिलुकं वृत्तम् ॥१॥

(नाठ टीठ) वेदानतदर्शन के बनाने वाले महर्षि व्यास जी ने जिन की नहीं बनाया, बल्कि अपने नतलब के हुशियार पोप लोगों ने जिन को गढा है, ऐसे निश्या दोषग्रस्त अप्रमाण अठारक्षों पुराणों को विद्वान् जन कदावि न मार्ने। यह स्वामी जी ने पहिला गण्प बतलाया है॥ १।।

^{*} भ्वादेराकृतिगणत्वाद् गप्त मिथ्यापरिभाषणे इति धातोरीणादिक प्रत्ये गप्पमिति भवति ॥

पाषाणमूर्त्तिमधिरोप्य कृतास्ति लोके या मन्दिरेषु मनुजानुकृतिप्रतिष्ठा । सा वेदमार्गविहिता न, ततो विरुद्धे-त्येतद् द्वितीयमपि गप्पमलं विचार्यम्॥२॥

(सं० टी०) या किन्छ मन्दिरेषु चेतनेतर शिलाविनिर्मितमूर्तिमवस्थाप्य मनुष्यक्रपराम कृष्णादिप्रतिकृतिपूजा मनुजैः कृतास्ति सा वेदमागविहिता न, प्रत्युत ततो विरुद्धास्ति, एतद् दितीयं गप्पं विद्वज्ञनैवोध्यम् ॥ २ ॥

(भाव टीव) जी कि आज कल मन्दिरों में पत्यर की मूर्ति रख कर रामादि मनुष्यों की पूजा करना है वह वेदविकतु है। इस खिये उस को दूसरा गण्य मानना वाहिये।। २॥

शैवं जिनेन्द्रमतमन्यद्तः एथिव्यां रामानुजादिमनुजैरुपकल्पितं यत् । स्त्रीवैष्णवादिकमनन्तविपत्तिमूलं सर्वं मृषेति परिचिन्त्य परित्यजन्तु ॥३॥ (सं॰टी॰)पृथिव्यां यन्मनुष्यैः सर्वविपत्तिमूलं शैवशाक्तवैष्णववळ्ळभरामानुजजनबौद्धचार्वाक ब्राह्मादिमतजातं परिकाल्पतमस्ति,तत्सर्वे मि-थ्या दुःखमूल्यमिति मत्वा सर्वे परित्यजनत्। एतदेव तृतीयं गप्पमिति विदांकुर्वन्तु ॥ ३॥

(भा० टो०) इस सारतवर्ष में जो कि आज कल मनुष्यों ने नबीन र शैवशाह्म जादि नी सी निन्यानवें एल मत मान रक्षे हैं वे सब कूंद्रे और दुःख में छे जाने वाले नाना विपिश्वयों छे बूज जान कर बिद्धान् छोक उन में कदापि विश्वास न करें। यही सहिषं द्यानन्द तीसरा. गण्य सानते हैं।। ३।।

यैरत्र विश्वबलये नरकोन्मुखानि हिंसापराणि बलिदानमयानि यत्नात्। विस्तारितानि विक्रतानि त एव सर्वे तन्त्रादयोपि परिहेयतया विवेचयाः ॥१॥

(सं० टी०) अत्र संसारे नरकप्रवर्तकानि हिंसाप्रधानानि बल्जिदान मद्यपान मांसभक्षणा-दीनि कुक्रमाणि यैविस्तारितानि ते तन्त्रादयो प्रन्थाअपि सर्वेस्त्याज्याः, एतदेव चतुर्थे गप्पम्॥

(भा० टी०) इस संसार के बीच में दुःख में छे जाने वाले, हिसा कराने वाले, बिलदान, मदापान, मांच प्रक्षण आदि कुकर्म जिन्हों ने चलाये, ऐसे तन्त्र ग्रन्थों को कोई महाशय विद्वान् न देखें। यही स्थामी जी ने चीषा गण्य बतलाया है ॥ ४ ॥

यत्सेवनेन परिनश्यति शीग्रमेव लोके मतिर्मतिमतामपि सर्वथैव । मद्माहिफेनविजयाकुतमालजातं सर्वं तदार्यपुरुषैः परिहेयमारात् ॥ ५ ॥

(सं० टी०) यथां सेवनात् मतिमता-मिष सत्वरं मितिः सर्वथा नश्यति तन्मद्यादि जातमार्थेर्न सेव्यम् । एतदेव पश्चमं गप्पम् । "बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते"इति शाक्षेधरः ॥ ५ ॥

(भाग टीन) जिन के चेवन ने खुद्धिमानों की भी मति श्रीप्र ही बिलकुल नाश को प्राप्त हो जाती है, ऐमे शराब, अफ़ीम, भांग, गांना, तमाकू वग़ैरह जितनी नशे की चीज़ें हैं सब को छोड़ना चाहिये। यह पांचवां गटप है। ॥॥

योषां विहाय निजधर्मरतां परस्ती संभोगपापपरिवर्धनदत्तभावाः । ये ये जगत्यनुदिनं विचरन्ति ते ते धूर्त्ताइति स्वहृदयेषु विचारयन्तु ॥ ६ ॥ (सं टी) निजधर्मः पतिशुश्रूषा तद्वती निजपतीं विहाय परस्त्रीसंभागएव पापस् । तत्परिवर्धने दत्तभावाः सन्तः ये ये पुरुषाः जगिति अनुदिनं विचरन्ति ते ते घूर्तां इति सर्वे जानन्तु। एतदेवाधर्मपरत्वात्षष्ठं गप्पस् ॥ ६ ॥

(साठ टीठ) हैवा में तत्पर अपनी खी को छोड़कर को पुरुष इस संसार में पर्द्धों में व्यक्तियार करने को तत्पर होते हैं वह घूर्स समझने वाहियें यह खटा नण्य माना गया है ॥ ६॥

द्यूतं तथा परिविनिन्दनमात्मभावग्रीयं कुसङ्गइति लोकतले निषिद्धम् ।
यद्यत्प्रवृत्तमलमस्ति तदेव सर्वं
मान्यैर्जनैरनुदिनं परिहेयमेव ॥ ७॥

(सं॰ टी॰) लेकितले यद्यनिषद्धं यूनं-परिनन्दनम्-अभिमानित्वं-चौर्यं-कुसङ्गादिकं च प्रवृत्तमस्ति तत्सर्वं मान्यैर्जनैः प्रतिदिनं त्या-ज्यम् । एतदेव सप्तमं गप्पम् ॥ ७ ॥

(भां टी) इस संनार में जो जो निषिद्ध जूआ, दूसरे की बुराई, अभिमान, घोरी, कुमझ आदि फैंडे हुये हैं वह प्रति दिन छोड़ने चाहियें। यह सातमां गप्प सतलाया है॥ ९॥

मिथ्याविकत्थनपर।पगुणानुवाद-मात्सर्यरागपरवञ्चकताच्छलानि । बोध्यानि धर्म्मनिरतैरतिदु:खहेतु-भूतानि गप्पमिदमष्टममुक्तमारात्॥द॥

(सं० टी०) मिथ्याविकत्थनं-परदोषकथनं-मात्सर्यकरणं-विषयरागवर्धनं-परवश्चकत्वमि-त्यादीनि यानि कुकर्माणि तानि सर्वैरिपि त्या-ज्यानीति भावः । एतदेवाष्टमं गप्पम् ॥ ८॥

(भाव टीव) कूंत छहना, दूचरे के दोवों का कहना, छछं हपन करना, विषयों में ज़ियादहतर फंक्ना आदि जिनने कुकमें हैं छन को सब आर्य महाशय छोड़ें। यही छाठनां गटप है॥ ८॥

एतनमया निगदितं लघुकाव्यस्ते गप्पाप्टकं यदुदितं मुनिनापि हर्षात्। नैजेषु बुद्धिपटलेषु विलिख्य सर्वे रालोच्यमेतदनुकूलतयैव हेयम्॥ ९॥ (सं॰ टा॰) अत्र लघुकाव्यसंग्रहे-यन्



मुनिना दयानन्देन भाषया निद्धितं तद्गपा-ष्टकं काव्यरूपेण मयोक्तम् । तदेतत्सर्वे विचार्य निजनिजधर्मानुरताभवन्तु । पूर्वोक्तगप्पाष्टकाद् दूरमरं निवसन्तिनि भावः ॥ ९ ॥

(ला० हो०) इस [लचुकाव्यसंग्रह] में की स्वामी द्यानन्द जी ने लाठ गण्य बतलावे थे वह काव्यक्रप से वर्णन किये गये। इन की हृद्य में विचारके अपने २ धर्मानुकूल कर्नी में सब सहाशय प्रवृत्त होकर अखिला-नन्दीं का अनुभव करें॥ ए॥

> द्वि श्री महर्षमानकविरवा-अखिलानन्द्यम्मेप्रणीते लघुकाव्यसंग्रहे सटीकं गण्याष्टकं समाप्तिमगमत्॥ 🗙 ॥

> > -:0:-

२८-२-१८०७ ईसवी

a

विज्ञापन

सर्व सज्जन महाशयों को विदित हो कि वर्तमान कविरत्न-पं० अखिलानन्द शम्मां शास्त्री जी का बनाया हुआ " बहुत्काव्य-संग्रह " बहुत शीघ्र छपकर तैय्यार होगा। जिस का मूल्य॥) मात्र होगा। ग्राहक महोदय नीचे लिखे पते पर शीघ्र पत्रव्यव-हार करें॥ उस में इतने ग्रन्थ हैं—

> १-आर्यवृत्तेन्दुषन्द्रका-छन्दोज्ञान के लिये है ॥

> २-वार्षिकोत्सवचंपू-जिस में सालाना जलसे हैं॥

> ३-परोपकारकल्पद्ध्य-नाम ही से अर्थ जानिये॥

> 8-गुरुकुलोदयकाव्य-देखने से ही मा-लुम होगा॥

> भ-उपनयनप्रशंसन-क्या' ही अच्छा काव्य है॥

६-विवाहविनोदकाव्य-विवाहका वर्णन है॥

७-शोकसंमूर्छनकाव्य-देखते ही कला देता है॥

६-विद्याविनोदकाव्य-स्वयं ही खुलासा है। यह ६ विषय हैं॥

निम्नस्थ पुस्तक छपे तैयार हैं शीघ्र मंगाइये

श्रीमह द्यानन्दलहरी मूल्य ≢) आर्यशिरीभूषणकाव्य मूल्य।) लघुकाव्यसंग्रह मूल्य ≢)॥

तीनों पुस्तक ललित संस्कृत छन्दोबहु हैं, साथ ही सब पर संस्कृतटीका और भाषाटीका निजकृत है॥

पता—

वर्त्तमान कविरत्न पं॰ अखिलानन्द शर्मा शास्त्री मु॰ पो॰ सहसवान, ज़िला–बदायूं र्गे इस्टार्ग - विद्याहर्ता करे

เยล โล นิยล์-บอเลก

THE PARTY OF THE PROPERTY OF THE PARTY OF TH

मही काला है म

इंग्राहर्त हैं के तरिए नियार है

CHARLES THE

्र (६ हम्बास व्यवस्था सुरक्ष क) । इस्तारा से सुरक्ष का क्षात्र को इस्तार के

- TEP

वर्गमाय कविरक्ष पंत्र अस्तितामस्य भागो स्थापनी स्थापनी सहस्रमास्य, जिलो-सदास्रो